कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ सोवियत यूनियन (सीपीएसयू) की 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट के प्रसंग में

शिवदास घोष

कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ सोवियत यूनियन (सीपीएसयू) की 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट के प्रसंग में

विश्व की अधिकतर कम्युनिस्ट पार्टियों ने जब इस रिपोर्ट को 'दिशा निर्देशक' कहकर अभिनंदित किया था, तब कॉमरेड शिवदास घोष ने यह कहा था कि अगर समय रहते इस रिपोर्ट की खामियों को दूर नहीं किया गया, तो यह 'संशोधनवाद की बाढ़ ला देगी'।

सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट ने न केवल बुर्जुआ जगत में, बल्कि हम कम्युनिस्टों में भी भारी उथल-पुथल मचा दी है। लेकिन चाहे कितनी ही उथल-पुथल क्यों न मची हो, जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर तथा जितने महत्व के साथ इस रिपोर्ट का विश्लेषण किया जाना चाहिए था, वह हम नदारद पाते हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह है कि किसी भी पक्ष की ओर से आवेगमुक्त होकर इस पर चर्चा नहीं की गयी। जिन्होंने इसका विरोध किया है या फिर जिन्होंने इसका समर्थन किया है, उनमें से किसी ने भी आवेगमुक्त तरीके से ऐसा नहीं किया है। अंध आवेग या पूर्वाग्रह से मुक्त हुए बिना किसी भी विषय में सच्चाई को जान पाना संभव नहीं है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद एवं ठोस तथ्यों के आधार पर आवेगमुक्त और शांत भाव से उक्त रिपोर्ट का विश्लेषण किया जाना चाहिए था। लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) की तो बात दूर रही, यहां तक कि दुनिया की किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी ने इस नजरिये और तरीके से विश्लेषण नहीं किया–भविष्य में कोई करेगा या नहीं यह हमें मालूम नहीं।

हमारी पार्टी एसयूसीआई की केन्द्रीय कमेटी सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट का बारीकी से पूर्ण अध्ययन-विश्लेषण करने के बाद कुछ निष्कर्षों पर पहुंची है। मैं यहां अपनी चर्चा को सिर्फ सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट तक ही सीमित रखना चाहूंगा। मैं इस

रिपोर्ट के बारे में दूसरी कम्युनिस्ट पार्टियों के वक्तव्यों की चर्चा में नहीं जाऊंगा। हमारी टिप्पणियों पर चर्चा करते समय भी हमारे कॉमरेडों को आवेगमुक्त रहना चाहिए।

आइए, सबसे पहले यह देखा जाये कि सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस में चर्चा के विषय क्या-क्या थे? वे कुछ इस प्रकार थे:

1. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांत के अनुरूप है या नहीं।
2. युद्ध की अपरिहार्यता का नियम अभी भी कार्यकारी है या नहीं।
3. समाजवाद में पहुंचने के विभिन्न तौर-तरीके-शांतिपूर्ण तरीके से समाज के पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण की संभावना।
4. पूंजीवादी दुनिया की वर्तमान स्थिति।
5. स्तालिन द्वारा लिखित किताब *'सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्याएं', (Economic Problems of Socialism in USSR)* पर मिकोयान और अन्य लोगों द्वारा उठाये गये कुछ सवाल।
6. व्यक्ति-पूजा।

इसके अलावा सोवियत अर्थव्यवस्था से संबंधित कुछ बिंदुओं पर भी कांग्रेस में चर्चा की गयी थी, जिन पर चर्चा करना हम यहां जरूरी नहीं समझते।

मूल चर्चा शुरू करने से पहले मैं यहां कुछ बातों को रखना चाहता हूं। हमारी पार्टी के गठन काल से ही हम बार-बार इस बात पर जोर देते आ रहे हैं कि गुरुवाद और मार्क्सवाद परस्पर विरोधी हैं। हमेशा ही हम गुरुवाद की तीव्र आलोचना करते रहे हैं। यद्यपि यह बात सच है कि मार्क्सवाद ऑथोरिटी की धारणा को नकारता नहीं है, तथापि ऑथोरिटी बोध संबंधी जिस धारणा से गुरुवाद का जन्म होता है, उसका मार्क्सवाद घोर विरोधी है। यह पूरी तरह मार्क्सवाद से बेमेल है। बहुत पहले हमने साम्यवादी आन्दोलन में प्रचलित चिंतन की यांत्रिक प्रक्रिया तथा संगठन की यांत्रिक पद्धति के बारे में आगाह किया था। परंतु हम ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंचे कि मौजूदा नेतृत्व अब मार्क्सवादी नहीं रह गया। इधर-उधर कुछ मामलों में गंभीर खामियों के बावजूद मौलिक तौर पर इसमें

कोई भटकाव नहीं था। यह बात वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी लागू होती है।* चिंतन प्रक्रिया में अगर यांत्रिकता आ जाये, तो क्या नुकसान होता है? यांत्रिक चिंतन प्रक्रिया का विशेष दोष क्या है? अंध और यांत्रिक समर्थन बड़े से बड़े नेता के गलती करने का सबब बन सकता है। नेता का अंध व यंत्रवत् समर्थन करने का मायने है कि जब नेता सही है तो पार्टी सही है और जब नेता गलती करता है, तो पार्टी भी गलती कर बैठती है। इस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है और यह दर्शाया जा चुका है कि विचारों के द्वन्द्व-संघर्ष और अंत:क्रिया के माध्यम से ही हर परिघटना का विकास संभव है। इसलिए अगर नेता व कार्यकर्ताओं के सोच-विचार में कोई वास्तविक द्वन्द्व न हो, तो नेता व कार्यकर्ताओं में से किसी के भी वैचारिक स्तर का समुचित विकास नहीं हो सकता। इस द्वन्द्व-संघर्ष और अंत:क्रिया के न रहने से ही अफसरशाही (bureaucracy) का जन्म होता है। अगर पार्टी के अंदर ऐसे संघर्ष से बचा गया, तो न चाहने पर भी व्यवहार में चिंतन की यांत्रिकता पैदा होकर रहेगी। यांत्रिक केन्द्रीयता अवश्यम्भावी रूप से शीर्ष पर अफसरशाही नेतृत्व को जन्म देती है। जैसा कि हम जानते हैं कि यांत्रिकी के नियम से ही आदि प्रवर्तक (प्राइम मूवर) की धारणा बनी है।

पार्टी के मामले में भी देखा जा सकता है कि औपचारिक तर्क (formal logic) को लेकर चलने से हमारा ज्ञान कभी सर्वांगीण नहीं हो पाता। चीजों पर यांत्रिक व औपचारिक ढंग से विचार-विश्लेषण करने से अधिक से अधिक हम आंशिक सत्य को ही जान सकते हैं। कोई पार्टी अगर किसी भी स्थिति का वस्तुपरक मूल्यांकन व सही विश्लेषण करने के प्रति गंभीर है, तो वह औपचारिक तर्क पर आधारित, सरलीकृत व एकांगी विचार-विश्लेषण की पद्धति को छोड़कर द्वन्द्वात्मक विचार-विश्लेषण की पद्धति को अपनाये बिना नहीं रह सकती। पार्टी अगर आन्दोलन के वैचारिक व सांगठनिक क्षेत्र में यांत्रिक केन्द्रीकरण की प्रक्रिया को घोषित तौर पर न सही, परंतु वास्तविक तौर पर मानकर चले, तो एक तरफ वैचारिक केन्द्रीयता निश्चय ही गुरुवाद को जन्म

* यद्यपि बाद में सीपीएसयू का नेतृत्व घोर संशोधनवादी हो गया था।

देगी और दूसरी तरफ सांगठनिक केन्द्रीयता शीर्ष स्तर पर अफसरशाही नेतृत्व को जन्म देगी। पहली स्थिति में कार्यकर्ताओं में उग्र व कट्टर मानसिक झुकाव तथा नेता व नेतृत्व के प्रति अंधभक्ति की मानसिकता का खतरा पैदा होना निश्चित है। ऐसी स्थिति में पार्टी में तमाम विचार-विमर्श यानी अंदरूनी चर्चा-बहस का उद्देश्य सत्य को जानना नहीं, बल्कि नेता जो कह रहे हैं उसे ही बिना कोई सवाल उठाये सत्य मान लेना और सत्य को ही जानने के संघर्ष छोड़ देना हो जाता है।

फलस्वरूप पार्टी के अंदर चिंतन क्षमता के वास्तविक विकास में जबर्दस्त बाधा पहुंचती है। जब हम जनवादी केन्द्रीयता की बात करते हैं, तब हमारा आशय वैचारिक और सांगठनिक दोनों केन्द्रीयताओं से होता है और निश्चित ही इसका मतलब सिर्फ पार्टी के अंदरूनी सांगठनिक मामलों में कुछ जनवादी रीति-नीतियों का पालन करना भर नहीं है। बहुत पहले से ही हम कहते आ रहे थे कि अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन के नेतृत्व की वैचारिक और सांगठनिक गतिविधियां मार्क्सवाद-लेनिनवाद के साथ मूलत: संगतिपूर्ण होने पर भी गंभीर कमियों-खामियों से मुक्त नहीं हैं। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन की चिंतन प्रक्रिया व संगठन पद्धति के मामले में यांत्रिकता के लक्षण बहुत पहले से ही दिख रहे थे। हमारे पुराने साहित्य में इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं। *हम लोगों ने बहुत पहले ही चेतावनी दे दी थी कि अगर विश्व साम्यवादी आन्दोलन और संगठन को इस यांत्रिकता से मुक्त न किया गया, तो टीटो की घटना ही शायद अंतिम घटना नहीं होगी। उस समय की हमारी यह आशंका बेबुनियाद नहीं थी। यह बात आज इतिहास ने साबित कर दी है।* परंतु अगर हम अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन की सिर्फ खामियों को ही महत्व देंगे तो यह गलत हो जायेगा। यही इसकी एकमात्र लाक्षणिकता नहीं है। इन खामियों के बावजूद कुल मिलाकर यह सच है कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन को सही नेतृत्व दिया है। हमारे देश के कुछ तथाकथित कम्युनिस्ट मित्र हमारे कम्युनिस्ट होने पर ही शक कर बैठे थे, क्योंकि हमने अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन की गलतियों-खामियों को दिखाने की जुर्रत की थी। यह बात कहने की ज्यादा जरूरत नहीं है कि ऐसे संदेह खड़े करने की कोई तुक नही है। क्योंकि इस बात को पलभर के लिए भी हम नहीं

भूल सकते कि जिस तरह अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी नेतृत्व के अनुभवों को हमें यथोचित मूल्य देना चाहिए, ठीक उसी तरह अपने अनुभवों को भी हम कम मूल्य देना सहन नहीं कर सकते। नेताओं और कार्यकर्ताओं के बीच अगर पारस्परिक संबंध नहीं है, तो प्रगति कदापि संभव नहीं है। नेतृत्व को जांचने-परखने का अधिकार मात्र रहना ही काफी नहीं है; व्यवहार में इसे लागू करना ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। एक मार्क्सवादी पार्टी के लिए संभावित गलतियों से पहले से ही सावधान रहना और इसे सही रास्ते पर रखना नितांत जरूरी है। परंतु इस विषय में भी यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि पार्टी नेतृत्व को जांचते-परखते समय या फिर उसकी आलोचना करते समय अंध आवेग और मोह से मुक्त रहना होगा। जब हम नेतृत्व को जांचते-परखते हैं, तो बुर्जुआ दर्शन के तमाम तरह के प्रभावों, खासकर निकृष्ट व्यक्तिवादी प्रभाव से हमें मुक्त रहना होगा। न केवल पार्टी-पांतों के सदस्यों को इस बात के प्रति सचेत-सजग रहना चाहिए कि नेतृत्व और आम पार्टी सदस्यों के बीच द्वन्द्वात्मक संबंध हैं या नहीं, बल्कि नेताओं का भी अपने सतत विकास और प्रगति के लिए पार्टी में इस संबंध को जीवंत बनाये रखना लाजिमी फर्ज़ बनता है। इस प्रकार नेतृत्व और कार्यकर्ताओं के बीच संबंध की प्रकृति और जिम्मेदारी का बोध पारस्परिक है। लेकिन अक्सर यह पाया जाता है कि मार्क्सवाद की इस सीख को भुला दिया जाता है। हमारा यह अनोखा तर्जुबा है कि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के कुछ कार्यकर्ता अक्सर इस तरह का तर्क देते हैं ''अच्छा तो आप कॉमिनफॉर्म की आलोचना कर रहे हैं? लिहाजा क्या आप इसे मानकर नहीं चलते? फिर आप कैसे कम्युनिस्ट बने रह सकते हैं?'' इस तरह के तर्क के साथ द्वन्द्ववाद का कोई लेना-देना नहीं है। यह औपचारिक तर्क की ही एक विशेष प्रकार की देन है। नेतृत्व के प्रति ऐसा रवैया एक पल में नेता को प्राय: भगवान बना देने और ठीक अगले ही पल आसानी से उसे तुच्छ कह देने में कोई हिचक महसूस नहीं करता। हालांकि ये दोनों आचरण एक-दूसरे के स्वविरोधी हैं। फिर भी ये उसी औपचारिक नजरिये की ही देन हैं। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन में औपचारिकतावाद की इस खामी के बारे में, खासकर पार्टी नेतृत्व की भूमिका और इसके प्रति सही नजरिया अपनाये जाने के विषय में हमने बहुत पहले ही साफ दिखाया था। हमारे

कॉमरेड यह अच्छी तरह से जानते हैं कि जर्मनी व चीन के सवाल पर सीपीएसयू के गलत विश्लेषण को हमने बहुत अर्सा पहले ही दिखाया था। परंतु उस समय साम्यवादी खेमे के अंतर्गत अन्य कोई पार्टी इन गलतियों को दिखाने के लिए आगे नहीं आयी थी। आयी भी होगी तो कम-से-कम हमें इसकी जानकारी नहीं है। इस संदर्भ में विचार करने पर सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस के निर्णयों पर हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी जरा भी चकित नहीं हुई।

इसलिए 20वीं पार्टी कांग्रेस में व्यक्ति-पूजावाद के खिलाफ जो नारा बुलंद किया गया है, इससे हमारे लिए खुश होने की खास वजह है और इस प्रयास का हम अभिनंदन करते हैं। परंतु इस प्रयास का स्वागत करने के साथ ही हम यह भी कहने के लिए मजबूर हो गये हैं कि व्यक्ति-पूजा की परिघटना को खत्म करने के लिए जो तरीका अपनाया जा रहा है, उसकी हम कतई तारीफ नहीं कर पा रहे हैं। इस रिपोर्ट से भी हमें कुछ आशंका है, वह यह है कि व्यक्ति-पूजा को समाप्त करने के नाम पर वे लोग दरअसल अपनी लड़ाई को व्यक्ति-पूजा के खिलाफ नहीं, बल्कि किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ चला रहे हैं। अन्यथा जिस व्यक्ति-पूजा को खत्म करने के बारे में इतना जोर दिया गया था, उस व्यक्ति-पूजा के विकास के पीछे मूल कारण क्या है, इसके बारे में स्वयं रिपोर्ट में कुछ क्यों नहीं कहा गया है? रिपोर्ट में कहा गया है कि स्तालिन अपने जीवन के अंतिम दौर में 'घमंडी', 'महत्वाकांक्षी', 'आत्मसंतुष्ट', 'अहंकारी' आदि हो गये थे। परंतु किस तरह स्तालिन जैसे उच्च दर्जे के एक नेता में ऐसी कमियां-खामियां पैदा हो सकी थीं, उसकी वजह क्या थी, कौन लोग इसके लिए मुख्यत: जिम्मेदार थे-इन बातों पर रिपोर्ट में कतई कोई चर्चा नहीं की गयी। हमें याद रखना होगा कि यह सोचना गलत है कि यह एक व्यक्ति है, जो अकेला व्यक्ति-पूजावाद में लिप्त हो सकता है। यहां तक कि अगर किसी कमेटी या बॉडी के प्रति कार्यकर्ताओं या जनता की अंधी और यांत्रिक अनुगतता को दूर करने के बजाय इसके द्वारा उन्हें इसी में लिप्त कर दिया जाये और इसे बढ़ावा दिया जाये, तो किसी कमेटी या बॉडी के क्रियाकलाप भी व्यक्ति-पूजावाद की इस परिघटना को जन्म दे सकते हैं। इसलिए हमें याद रखना चाहिए कि महज किसी एक

व्यक्ति का विरोध करने से ही व्यक्ति-पूजा को खत्म नहीं किया जा सकता है।

अगर कुछ लोगों का एक गुट एक साथ मिलकर काम करता है, तो उसका खुद-ब-खुद यह मायने नहीं हो जाता है कि सामूहिक नेतृत्व कायम हो गया है। सामूहिक नेतृत्व कायम होना केवल तभी कहा जा सकता है, जब पार्टी की चिंतन प्रक्रिया में द्वन्द्वात्मक तौर-तरीका यानी विचारों के बीच संघर्ष और अंत:क्रिया मौजूद पायी जाती है। यह आरोप लगाया गया है कि स्तालिन के जीवन के आखिरी दौर में सामूहिक नेतृत्व काम नहीं कर रहा था, लेकिन हमारी राय में यह केवल चीजों के कार्य संचालनात्मक पहलू को ही प्रतिफलित करता है।

कार्ल मार्क्स ने *पूंजी* की रचना की थी। एक मायने में यह एक व्यक्ति के चिंतन की ही उपज थी। तब इसी से क्या हम *पूंजी* को व्यक्तिगत ढंग से मार्क्स के चिंतन की देन समझेंगे? या क्या यह सामाजिक चेतना के एक व्यक्ति के जरिये हुए व्यक्तिकरण को ही प्रतिफलित नहीं करता है, जो कि दरअसल सामूहिक नेतृत्व के अलावा और कुछ नहीं है? अत: कई व्यक्तियों को लेकर गठित किसी कमेटी की सोच में जिस तरह व्यक्तिवादी सोच का प्रभाव रह भी सकता है और वास्तव में वह व्यक्तिवादी सोच के रुझान को प्रतिबिंबित कर सकती है, ठीक उसी तरह एक व्यक्ति के माध्यम से भी पार्टी के समस्त सदस्यों व कार्यकर्ताओं का सामूहिक ज्ञान सर्वोत्तम रूप से प्रतिबिंबित हो सकता है। सामाजिक सोच जब पार्टी के तमाम सदस्यों के सामूहिक ज्ञान के रूप में किसी व्यक्ति के माध्यम से व्यक्तिकृत होती है, तो वह सामूहिक नेतृत्व ही होता है। वास्तव में देखने की बात यह है कि पार्टी के अंदर विचारों के मामले में सही ढंग का द्वन्द्व-संघर्ष व अंत:क्रिया काम करती है या नहीं। यह उचित सवाल उठ सकता है कि जब किसी एक व्यक्ति के माध्यम से सामूहिक चिंतन को व्यक्तिकृत किया जा सकता है, तब सामूहिक नेतृत्व की क्या जरूरत है? जरूरत है, वरना गलतियों से बचाव की कोई गारंटी नहीं है। यह गारंटी देने के लिए वैचारिक व सांगठनिक कार्यकलापों में सामूहिक कार्यपद्धति आवश्यक ही नहीं, बल्कि अलंघनीय भी है। एक व्यक्ति, चाहे वह कितना ही बड़ा क्रांतिकारी क्यों न हो, गलती कर सकता है। स्वाभाविक

है कि अगर सामूहिक कार्यपद्धति का अभ्यास न हो, तो उस नेता की गलती का अनुसरण करते हुए पूरी पार्टी एक दिन मूल नीति से भटक भी सकती है। इसलिए सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी में सामूहिक कार्यपद्धति व सामूहिक नेतृत्व विकसित करने का सवाल निहायत ही अपरिहार्य है।

पार्टी के सामूहिक नेतृत्व से हम क्या समझते हैं? पार्टी के सभी सदस्यों का सामूहिक ज्ञान ही सामूहिक नेतृत्व होता है। इस सामूहिक ज्ञान का विकास मूलत: पार्टी के तमाम सदस्यों व कार्यकर्ताओं की चेतना के स्तर से निर्धारित होता है। इसलिए सामूहिक ज्ञान का जन्म और विकास तभी संभव होता है, जब चेतना के इस उन्नततर स्तर के आधार पर पार्टी के नेताओं व कार्यकर्ताओं के बीच विचारों का द्वन्द्व-संघर्ष और अंत:क्रिया होती है। अत: यह स्पष्ट है कि महज एक आदर्श जनवादी संविधान अपनाने से ही जनवादी केन्द्रीयता अस्तित्त्व में नहीं आ जाती। जनवादी केन्द्रीयता का वास्तविक आधार कॉमरेडों का उन्नत वैचारिक-सांस्कृतिक स्तर होता है। इसलिए ऐसा न होने पर या तो किसी व्यक्ति के प्रति, नहीं तो ठीक उसी तरह किसी एक कमेटी के प्रति अंधभक्ति की भावना पैदा हो जाना अनिवार्य है। इसलिए अंधे की तरह किसी खास नेता का अनुसरण करना जिस तरह व्यक्ति-पूजावाद का ही दूसरा नाम है, ठीक उसी तरह अंधे की तरह केन्द्रीय कमेटी का अनुसरण करना या उसके प्रति अंध भक्ति की मानसिकता रखना भी उसी व्यक्ति-पूजावाद के ही दूसरे रूप के सिवा और कुछ नहीं है। इन सारे पहलुओं को ध्यान में रखकर हमारा दृढ़ मत है कि समस्याओं के उन गंभीर पहलुओं पर जिनको लेकर 20वीं पार्टी कांग्रेस में चर्चा की जानी चाहिए थी—चर्चा नहीं की गयी। इसलिए व्यक्ति-पूजावाद से लड़ने की घोषणाओं और पवित्र इच्छाओं के बावजूद ऐसा लगता है कि चिंतन की यांत्रिक प्रक्रिया की पुरानी परंपरा से कोई विच्छेद नहीं हो पाया है। जिस तरह से लगभग सभी कम्युनिस्ट पार्टियां 20वीं पार्टी कांग्रेस के निर्णयों को बगैर कोई सवाल उठाये मान रही हैं, उससे हमारी उपरोक्त आशंका ही सही साबित होती है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का वर्तमान नेतृत्व कह रहा है कि 1934 तक कॉमरेड स्तालिन ने कोई भी भटकाव नहीं दिखाया था। इनके

वक्तव्य में इस बात का भी जिक्र है कि लेनिन के देहांत के बाद स्तालिन ने साम्यवादी आन्दोलन में व्याप्त हर तरह के भटकाव के खिलाफ अविराम वैचारिक संघर्ष चलाया था। स्वाभाविक तौर पर उनकी अपनी टिप्पणी से ही यह तार्किक नतीजा निकलता है कि कॉमरेड स्तालिन की कार्यशैली और तौर-तरीके जिस पर आज बहुत सारे सवाल उठाये गये हैं, कम-से-कम 1934 से पहले तक पार्टी जीवन में मौजूद नहीं थे। अब सवाल उठता है कि स्तालिन के जीवन के अंतिम दौर के ये कथित भटकाव कैसे और किसका अनुसरण करते हुए उभरकर आ सके? इन सब के पीछे संभवतः कार्यरत मूल कारण का अगर हम पता नहीं लगा सके, तो भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति होने के खतरे को भी टाल नहीं सकते हैं। टीटो की घटना के बारे में भी हमने इसी तरह की चेतावनी दी थी। ख्रुश्चेव ने अपनी रिपोर्ट में व्यक्ति-पूजावाद के जन्म और विकास के पीछे कार्यरत मूल कारण और किस तरह उसे दूर किया जा सकता है, इस विषय पर कुछ भी नहीं कहा है। इस दृष्टि से विचार किया जाये तो इनका तर्क एकतरफापन के दोष से ग्रस्त है। कॉमरेड* ख्रुश्चेव के अधिकांश तर्क इस तरह के एकांगीपन के दोषों से ग्रस्त हैं। *उदाहरण के तौर पर जैसे उन्होंने* कहा है, ''द्वितीय विश्वयुद्ध में जीत के लिए स्तालिन की तारीफ करना गलत है। दरअसल लाल फौज ही तारीफ की असली हकदार है।'' ऐसे तर्क निहायत ही अजीबोगरीब और हास्यास्पद हैं! क्योंकि स्तालिन की नेतृत्वकारी भूमिका को यथोचित मान्यता देने का मतलब किसी तरह भी लाल फौज की भूमिका को नकारना नहीं होता है। जनता की भूमिका व सहयोग के बगैर नेता की नेतृत्वकारी भूमिका का सवाल ही पैदा नहीं होता है। इसलिए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ख्रुश्चेव ने जानबूझकर स्तालिन की भूमिका को गौण करके दिखाने की कोशिश की है। एक व्यक्ति की ऐतिहासिक भूमिका को मान्यता देने में विफल होने का मतलब है उग्र जनवाद को जन्म देना, जो अपनी बारी में पार्टी के अंदर नेतृत्व के विशेषीकृत रूप की अवधारणा को ही दफना देगा।

वस्तुगत रूप से यह समझना जरूरी है कि व्यक्ति-व्यक्ति में

---

* जो बाद में वर्गद्रोही हो गये थे।

फर्क होता है। इसी कारण से हमने पहले यह टिप्पणी की है कि इन लोगों का तर्क एकतरफापन से ग्रस्त है। ठीक उसी तरह व्यक्ति-पूजावाद के खिलाफ उन्होंने जो हथियार उठाया है, उस पर भी एक और वाजिब सवाल उठना लाजिमी है। इस बात को अगर हम मान भी लें कि स्तालिन ने व्यक्ति-पूजावाद को जन्म दिया था, तो निस्संदेह स्तालिन भी अपनी जिम्मेदारी के यथोचित हिस्से से मुक्त नहीं किये जा सकते। परंतु इसके लिए वर्तमान नेताओं की जिम्मेदारी भी कोई कम नहीं है। अगर किसी भी नेता को अंध समर्थन दिया जाता रहे, तो उसका व्यक्ति-पूजावाद का शिकार हो जाना असंभव बात नहीं है। आज वे स्तालिन पर बहुत सारे आरोप लगा रहे हैं। स्तालिन की कुछ भूल-चूक हमारी नजरों से बच नहीं पायी थीं। परंतु स्तालिन पर अब उन्होंने जो आरोप लगाये हैं, उन्हें सही ठहराने के लिए अपने समर्थन में जो दस्तावेज, सबूत आदि पेश करने चाहिएं थे, उन्होंने वे पेश नहीं किये। मानो ये सब समस्याएं सिर्फ सीपीएसयू से ही ताल्लुक रखती हों, अन्य किसी से नहीं—उनका रवैया ऐसा ही लगता है। स्तालिन संबंधी इन सभी मामलों को सीपीएसयू एकाधिकृत करने की कोशिश कर रही है। परंतु हमारे ख्याल से स्तालिन से संबंधित कोई भी सवाल सिर्फ सोवियत यूनियन का ही मामला नहीं है, बल्कि पूरी दुनिया की तमाम मेहनतकश जनता से सरोकार रखने वाला मामला है। इसलिए हमारी सुचिन्तित राय में ऐसे एक अति महत्वपूर्ण मामले पर पूरी दुनिया के कम्युनिस्टों के विचार की तनिक भी परवाह न करके एकतरफा निष्कर्ष पर पहुंच जाना उनकी तरफ से बहुत ही अनुचित बात हुई। व्यक्ति-पूजावाद के खिलाक लड़ने में अगर वे सचमुच ही गंभीर होते, तो उन्हें इस आचार संहिता को मानकर चलना चाहिए था।

इस संबंध में एक और बात याद रखनी चाहिए। कम्युनिस्टों का हर एक काम उद्देश्यपरकता बोध से संचालित होना चाहिए। उद्देश्यहीन ढंग से कोई भी काम करना गैर-कम्युनिस्ट चरित्र का परिचायक है। जब एक व्यक्ति जिंदा ही नहीं है, उसका सिर्फ विचार ही मौजूद है तो उस व्यक्ति को सुधारने का या उनसे लड़ने का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसलिए ऐसा लगता है कि व्यक्ति-पूजावाद के खिलाफ लड़ने के नाम पर वे लोग ऐसे व्यक्ति से लड़ रहे हैं, जो गुजर चुका है। वरना हमारे विचार से बेहतर तो यह होता कि व्यक्ति-पूजावाद की उत्पत्ति और

विकास के पीछे उनकी अपनी भूमिका व योगदान तक ही अपने आपको सीमित रखते। हमारा यह सुविचारित मत है कि अगर व्यक्ति-पूजा की उत्पत्ति और विकास के मूल कारण को पूरी तरह से उजागर करके नहीं रखा गया, तो व्यक्ति-पूजावाद में, जो कि चरम गुरुवाद के सिवा और कुछ नहीं है, सीपीएसयू की केन्द्रीय कमेटी तक भी अपने क्रियाकलापों के जरिये लिप्त हो सकती है।

परंतु हमारी इस आलोचना से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि वर्तमान नेतृत्व मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी सिद्धांतों से पहले ही भटक चुका है। यह निष्कर्ष निकाल लेना गलत हो जायेगा।*

जो कॉमरेड सीपीएसयू की वर्तमान भूल-चूकों को देखकर पूछ रहे हैं कि वहां एक सही कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के लिए सीपीएसयू को खत्म कर देने का औचित्य बनता है या नहीं—वे गलती कर रहे हैं। सोचने का यह ढंग ट्राटस्कीवाद से प्रभावित है, जो कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी सोच है।

पहला, हम पहले ही दिखा चुके हैं कि सीपीएसयू का वर्तमान नेतृत्व मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी सिद्धांतों से अब तक भटका नहीं है। दूसरा, सीपीएसयू को बुनियादी भटकाव की ओर भटक जाने से बचाने में सोवियत जनता की भूमिका को हम नकार नहीं सकते। इतना ही नहीं, बल्कि हमारे देश के उलट जहां जनता की भूमिका बहुत हद तक मनोगत (subjective) है, सोवियत यूनियन में यह वस्तुगत (Objective) सच्चाई है। हालांकि मुख्य बिंदु पर आने से पहले हम यह कहना चाहेंगे कि सीपीएसयू के वर्तमान नेतृत्व की आलोचना का

---

* सीपीएसयू के चरित्र के बारे में 1956 में अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन के समक्ष जो अनुभव मौजूद थे, उनके आधार पर यही था हमारी पार्टी का मूल्यांकन। यह कॉमरेड शिवदास घोष के नेतृत्व में हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ही थी, जिसने इस तथ्य को दर्शाया कि चिंतन व संगठन की यांत्रिक प्रक्रिया से पिंड छुड़ाने और अपनी गलतियों को सुधारने में असमर्थ रहने के चलते सीपीएसयू नेतृत्व पूरी तरह संशोधनवादी नेतृत्व में पतित हो गया है। परंतु चूंकि सीपीएसयू का नेतृत्व घोर संशोधनवादी हो गया है, इसलिए पूरी पार्टी भी अपने आप गैर मजदूर वर्गीय पार्टी में पतित हो गयी है—ऐसा निष्कर्ष निकाल लेना भी गलत होगा। क्योंकि संशोधनवादियों द्वारा नेतृत्व हथिया लिया जाने से ही तुरंत उस पार्टी का मजदूर वर्गीय चरित्र अपने आप समाप्त नहीं हो जाता।

उद्देश्य उसकी भूल-चूकों को सुधारने में मदद करने और इस तरह उसे मजबूत करने के सिवा और कुछ नहीं है।

20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट पर चर्चा करते हुए सोवियत नेताओं के योगदानों को मान्यता दिये बगैर केवल उसकी कमी-खामियों पर ही पूरा ध्यान केन्द्रित करना गलत हो जायेगा। फिर, केवल उनके योगदानों की ही तारीफ करना, वे जो कुछ कहते हैं उन सभी बातों का समर्थन करना और उनकी भूल-चूकों व कमी-खामियों को न दर्शाना भी उतना ही गलत हो जायेगा। ये दोनों ही रवैये समान रूप से गलत हैं। चूंकि यह पार्टी सोवियत यूनियन की कम्युनिस्ट पार्टी है, इसलिए यह कोई गलती कर ही नहीं सकती—यह रवैया अंधता से ग्रस्त है। इस दृष्टिकोण से हमें यकीन है कि सोवियत नेतागण भी हमारे वक्तव्य पर शांतचित्तता और गंभीरता से विचार करेंगे। आइए, अब 20वीं पार्टी कांग्रेस में जिन विषयों पर चर्चा की गयी है, उन को हम एक-एक करके लें।

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के बारे में

पूंजीवादी व समाजवादी राष्ट्रों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के बारे में सीपीएसयू का नजरिया पूरी तरह से सटीक न होने पर भी हमारी व्याख्या से यह सामान्यतः मेल खाता है। यह बात हम बहुत पहले ही कह चुके हैं कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति महज एक कूटनीतिक दांव-पेंच नहीं है, बल्कि वास्तविक आवश्यकता की स्वीकृति की ही अभिव्यक्ति है और यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांतों से पूर्णतः संगति रखती है। ऐसा लग रहा है कि 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट में इसकी व्याख्या उन्होंने कमोबेश इसी तरह से करने की कोशिश की है।*

---

* शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति महज एक कूटनीतिक दांव-पेंच नहीं है, सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस के इस वक्तव्य से हालांकि हम आम तौर पर सहमत थे, बाद की घटनाओं ने संदेहातीत रूप से यह साबित कर दिया है कि सीपीएसयू का वर्तमान नेतृत्व शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की इस नीति के क्रांतिकारी तात्पर्य को समझने में न केवल विफल रहा है, बल्कि इस नीति को सही ढंग से लागू करने के मामले में भी वह बुरी तरह विफल रहा है। उन्होंने इस नीति को असल में शांतिपूर्ण आत्मसमर्पण की नीति में तब्दील कर दिया है।

युद्ध की अपरिहार्यता के नियम के बारे में

इस मुद्दे पर सीपीएसयू के वर्तमान नेतृत्व ने स्तालिन के नाम का उल्लेख किये बगैर स्तालिन के विश्लेषण को ही दोहराया है। एक और बात पर भी हमें गौर करना है। रिपोर्ट में पूरे विषय को औपचारिक ढंग से कई भागों में बांट दिया गया है। एक भाग में यह दिखाया गया है कि चूंकि साम्राज्यवाद आज भी कायम है और साम्राज्यवाद ही युद्ध का कारण है, इसलिए ''पूंजीवादी देशों के बीच युद्ध की अपरिहार्यता का नियम'' का लेनिन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत आज भी पहले जैसा ही कारगर है। दूसरे भाग में जहां यह दिखाया गया है कि युद्ध नियतिवादी ढंग से अनिवार्य नहीं है, वहीं बदली हुई अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के महत्व और खासकर शांति आन्दोलन की बढ़ती ताकत पर एकतरफा जोर इतना ज्यादा दिया गया है कि एक गलत निष्कर्ष ही निकल सकता है कि साम्राज्यवाद के विश्व व्यवस्था के रूप में मौजूद रहने पर भी युद्ध से हमेशा के लिए पिंड छुड़ाया जा सकता है। इस विभागीकृत नजरिये ने पहले ही कुछ गलतफहमियां पैदा कर दी हैं। उदाहरण के लिए जैसे रोमानिया की कम्युनिस्ट पार्टी ने पहले ही यह कह दिया है कि अब युद्ध की कोई संभावना नहीं है। इस दृष्टि से विचार किया जाये, तो इस मुद्दे पर स्तालिन का दृष्टिकोण कहीं अधिक सम्यक व द्वन्द्वात्मक है।

स्तालिन की कृति–*'सोवियत संघ में समाजवाद की कुछ आर्थिक समस्याएं'* के बारे में

20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट में ख्रुश्चेव ने और खासतौर पर ज्यादा मिकोयान ने स्तालिन की इस किताब में समाहित कुछ थीसिसों की आलोचना की है। ख्रुश्चेव ने अपनी रिपोर्ट में लेनिन को उद्धृत करके दिखाया है कि पूंजीवादी व्यवस्था में तीव्र संकट की स्थिति में भी उत्पादन में पूर्ण ठहराव या गतिरोध आ जाने की धारणा गैर–मार्क्सवादी है। हालांकि उन्होंने यह खुलासा नहीं किया है कि ''पूर्ण ठहराव'' की किसकी धारणा से वे लड़ रहे हैं, तथापि चर्चा के रुझान से यह एकदम साफ था कि उनका

अभिप्राय कॉमरेड स्तालिन की अवधारणा से ही था।*

हमारा यह पूर्वानुमान बिल्कुल निराधार नहीं है। कॉमरेड** मिकोयान की रिपोर्ट ही इसका सबूत है। मिकोयान 20वीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट को समर्थन देते हुए स्तालिन की उपरोक्त किताब में समाहित उनकी कुछ थीसिसों की आलोचना करने में जुट गये थे, जो हमारी राय में निहायत गैर–जरूरी और अप्रासंगिक था। मिकोयान ने ख्रुश्चेव की तरह न करके सीधे तौर पर स्तालिन की आलोचना की है–मानो पूंजीवादी तीव्र संकट की स्थिति में पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन की वृद्धि और विकास के ठप हो जाने, ''पूर्ण ठहराव या गतिरोध'' आ जाने की बात स्तालिन ने कही हो। कॉमरेड स्तालिन ने उक्त किताब में पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी विकास में ठहराव या गतिरोध की बात तो कही थी, लेकिन हमारा मानना है कि इस बात से किसी तरह यह मायने नहीं निकाला जा सकता कि उन्होंने उत्पादन की वृद्धि–विकास में पूर्ण ठहराव की बात कही थी। हम तो इससे हैरान रह गये कि ख्रुश्चेव और मिकोयान जैसे नेता स्तालिन की प्रस्थापना की ऐसी विकृत व्याख्या कैसे पेश कर सके। विश्वयुद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की स्थिति का विश्लेषण करते हुए स्तालिन ने सुनिर्दिष्ट रूप से दिखा दिया था कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में ठहराव की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा स्पष्ट प्रकट

---

* बाद में यह और भी साफ हो गया कि ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सीपीएसयू के संशोधनवादी नेतृत्व ने कॉमरेड स्तालिन के प्रतिपादनों के खिलाफ खुले हमले का संचालन किया था। 1962 में जब *'वोप्रोसी इकोनॉमिकी'* के पहले अंक में कुछ सोवियत अर्थशास्त्रियों का एक दल *'बुनियादी आर्थिक नियम'* शीर्षक से एक लेख प्रकाशित कर स्तालिन के विभिन्न आर्थिक प्रतिपादनों के खिलाफ खुले तौर पर प्रचार करने लगा, तो कॉमरेड शिवदास घोष ने उन अर्थशास्त्रियों के गलत चिंतनों और धारणाओं का पूरा पर्दाफाश किया था और *'कुछ आर्थिक समस्याए'* नामक लेख में इसका जवाब दिया था। यह लेख सर्वप्रथम *'सोशलिस्ट यूनिटी'* (वर्ष 3, नई सीरीज, सितंबर 1962) में और फिर *प्रोलिटेरियन एरा* (वर्ष 8, अंक 20, दिनांक 1 अगस्त 1975 और वर्ष 9, अंक 1, दिनांक 15 अगस्त 1975) में प्रकाशित हुआ था।)

** जो बाद में वर्ग द्रोही हो गये थे।

होती जा रही है और जिस बात से खुद ख्रुश्चेव भी सहमत हैं। मगर जो बात स्तालिन ने कही ही नहीं उसका दोष उनके मत्थे मढ़ देना हमारी राय में एक संगीन अपराध है। इसके अलावा मिकोयान ने सीपीएसयू की केन्द्रीय कमेटी की रिपोर्ट से पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में तीव्र संकट की स्थिति में भी उत्पादन में वृद्धि के कुछ आंकड़े ले लिये। इस तरह मिकोयान ने स्तालिन के वक्तव्य से केवल अंतिम वाक्य को चुनकर और उसका उत्पादन में वृद्धि के उपरोक्त आंकड़े से मिलान करके स्तालिन के वक्तव्य की सटीकता को चुनौती दे डाली। स्तालिन के लेख से जिस वाक्य को मिकोयान ने उद्धृत करने के लिए चुना, वह है "Since the volume of production in these countries will diminish" अर्थात "चूंकि इन देशों में उत्पादन की मात्रा घटेगी।" हालांकि पूरा वाक्य यह है–"However expansion of production in these countries will proceed on a narrower basis, since the volume of production in these countries will diminish." अर्थात "हालांकि इन देशों में उत्पादन का प्रसार संकुचिततर आधार पर होगा चूंकि इन देशों में उत्पादन की मात्रा घटेगी।"

इस तरह, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व पूंजीवाद के निरंतर बढ़ते संकट और बदली हुई अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मद्देनजर विश्व पूंजीवादी बाजार के और भी संकुचित होते जाने के फलस्वरूप भविष्य में इन पूंजीवादी देशों में उत्पादन की मात्रा घटने की संभावना के बारे में स्तालिन ने चर्चा की है और उसी नजरिये से उन्होंने यह प्रतिपादन किया था कि इन सब देशों में ''उत्पादन का प्रसार संकुचिततर आधार पर'' होगा। इस अंतिम वाक्य में भविष्य में क्या होने जा रहा है, सिर्फ इसी का इशारा उन्होंने किया है, न कि आज जो वास्तव में हो रहा है उसका। इसलिए वर्तमान में पूंजीवादी उत्पादन के थोड़ी-बहुत विकास-वृद्धि को मद्देनजर रखते हुए स्तालिन के पूरे कथन को ही नामंजूर कर देने का कोई भी प्रयास मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विषय में घोर अज्ञानता को ही दर्शाता है। लेनिन के 1916 की बसंत ऋतु में लिये गये तत्कालीन एक खास निर्णय के बारे में स्तालिन द्वारा की गयी व्याख्या और विश्लेषण को गलत सिद्ध करने के मकसद से मिकोयान ने लेनिन के 1916 के उक्त लेख से फिर उद्धरण पेश किये हैं। मिकोयान ने शायद जानबूझकर यह भूल जाना अच्छा समझा कि खुद स्तालिन ने पहले ही दिखा दिया था कि लेनिन की यह खास थीसिस आज की बदली हुई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अब

और कारगर नहीं रही है। इसलिए लेनिन ने जो कुछ कहा था उससे स्तालिन को गलत साबित नहीं किया जा सकता। उनको गलत साबित करने के लिए जो जरूरी है वह है आज की बदली हुई आर्थिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उनके वक्तव्य की जांच-परख करना। अगर इन तमाम कार्रवाइयों पर गंभीरता से गौर किया जाये, तो एक और अजीब पहलू किसी भी मार्क्सवादी की नजर से ओझल नहीं रह सकता। स्तालिन का विरोध करने की भावना ने मिकोयान को इतना ज्यादा जकड़ लिया कि स्तालिन की गलती दिखाने के प्रयास में वे ख्रुश्चेव तक के मूल कथन का भी खंडन कर बैठे। आइए, इसकी सविस्तार व्याख्या करके देखें। पूंजीवाद के लगातार गहराते संकट की विशेषतासूचक युद्धोत्तर आर्थिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में स्तालिन ने निष्कर्ष निकाला था कि ''पूंजीवादी बाजार के सापेक्ष स्थायित्व'' के बारे में उनकी थीसिस और लेनिन की यह थीसिस कि ''पूंजीवाद पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से विकास कर रहा है'' दोनों ही थीसिसें अपनी कार्यकारिता खो चुकी हैं। स्तालिन विश्व पूंजीवाद के आम संकट व पूंजीवादी बाजार की बढ़ती अस्थिरता के परिप्रेक्ष्य में ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे। अर्थात विश्व पूंजीवादी बाजार के सापेक्ष स्थायित्व के समय जो विचार सही था, उसने विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की घोर अस्थिरता के बदले हुए परिप्रेक्ष्य में अपनी कार्यकारिता खो दी है। ख्रुश्चेव ने भी अपनी रिपोर्ट में आज की विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की चरम अस्थिरता के बारे में स्पष्ट तौर पर चर्चा की है। संकटग्रस्त पूंजीवादी बाजार की अस्थिरता के साथ ही लेनिन की उपरोक्त थीसिस ओत-प्रोत रूप से जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से मिकोयान ख्रुश्चेव के कथन का भी खंडन कर बैठे हैं। यह सचमुच में अजीब बात है। यह सब दो संभावनाओं को पेश करता है–ये लोग या तो स्तालिन के वक्तव्य को पूर्णतः गलत समझे या उन्होंने जानबूझकर ही उसे विकृत किया है।

पूंजीवाद से समाजवाद में शांतिपूर्ण तरीके से संक्रमण के बारे में

ख्रुश्चेव ने अपनी रिपोर्ट में सभी पूंजीवादी देशों में पूंजीवादी राज्य संरचनाओं को हटाकर उनकी जगह समाजवादी राज्य संरचनाओं को कायम कर देने की आवश्यकता का जो जिक्र किया है, उसके बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती। परंतु यह किस प्रकार से संभव है–शांतिपूर्ण तरीके से या फिर सशस्त्र जन अभ्युत्थान के जरिये–यही मूल सवाल है। मार्क्स ने ही

एक समय यह विचार व्यक्त किया था कि कुछ देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद कायम करना संभव है। परंतु उस समय की वस्तुगत परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न थीं। उस समय के पूंजीवादी देशों में उभरते हुए जनवादी परिवेश पर मार्क्स ने काफी उम्मीदें लगायी थीं। परंतु समय के साथ-साथ परिस्थितियां भी बदलती गयीं। इसलिए कॉमरेड लेनिन ने स्पष्ट तौर पर यह घोषणा की थी कि सशस्त्र जन अभ्युत्थान के जरिये बुर्जुआ राज्य सरंचनाओं को ध्वस्त किये बगैर समाजवादी क्रांति संपन्न नहीं की जा सकती। यह बात आज भी सही है। ठोस स्थिति से अलग-थलग करके किसी मुद्दे पर चर्चा करना मार्क्सवाद से असंगत बात है। उन दिनों में ठोस स्थिति के लेनिन के ठोस विश्लेषण ने समाजवाद हासिल करने के लिए जनमानस में सशस्त्र जन अभ्युत्थान की अनिवार्य जरूरत के विचार को सुनिश्चित रूप में देने में जबरदस्त भूमिका निभायी थी। हालांकि समाजवादी देशों के पड़ोसी पूंजीवादी देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद हासिल करने की संभावना पर लेनिन ने भी गौर किया था।

शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद की स्थापना की संभावना की व्याख्या करते हुए ख्रुश्चेव ने कहा है—''अगर पूंजीपति बाधा नहीं डालते हैं और किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं करते हैं, तो कम्युनिस्ट लोग भी हिंसा का रास्ता नहीं अपनायेंगे, परंतु चूंकि यह निश्चित है कि वे ऐसा करेंगे ही, इसलिए इसके लिए हमें सजग रहना चाहिए।'' कम्युनिस्ट खून के प्यासे होते हैं—ऐसे दुष्प्रचार का मुकाबला करने के लिए ख्रुश्चेव का यह नजरिया निस्संदेह बहुत उपयोगी है। इतनी ही बात कहकर अगर वे रुक जाते, तो अच्छा होता। परंतु वे यह मान करके एक कदम आगे चले गये कि वर्तमान बदली हुई अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में कई पूंजीवादी व पूर्ववर्ती औपनिवेशिक देशों में शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति की जा सकती है। इनकी इस टिप्पणी से हम लोग सहमत नहीं हो सके। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इस बात को कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि ख्रुश्चेव की यह टिप्पणी विभिन्न देशों के साम्यवादी आन्दोलन में संशोधनवादी-सुधारवादी रुझान पैदा करने में मदद करेगी। हरेक पूंजीवाद देश के कम्युनिस्ट लोग यह सोचना शुरू कर सकते हैं कि उन्हीं के देश में शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति होगी। फलस्वरूप यह क्रांति के लिए तैयारी में गंभीर रूप से बाधा डालेगी। यह एक पहलू है। दूसरा एक पहलू और भी है, जो हमारी नजरों से बच नहीं सका है। इस मामले में ख्रुश्चेव के वक्तव्य ही स्वविरोध से ग्रस्त हैं।

पहले उन्होंने कहा कि केवल उन्हीं अत्यंत उन्नत पूंजीवादी देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद आयेगा जहां जनवाद की परंपरा है। ठीक दूसरे ही पल उन्होंने कहा कि केवल ''कमजोर पूंजीवादी देशों'' के लिए यह तरीका लागू होता है। फिर एक अन्य संदर्भ में अत्यंत उन्नत पूंजीवादी देशों के मामले में उन्होंने जोर देकर यह बात कही कि हिंसक क्रांति अवश्यम्भावी है। इन सब वक्तव्यों का सार है स्वविरोध। इस संदर्भ में हम स्तालिन के इस वक्तव्य को आज भी सबसे उपयुक्त व सबसे श्रेष्ठ मानते हैं कि ''आज समाजवादी देश को जिस प्रकार विभिन्न पूंजीवादी देशों ने घेर रखा है, इसकी जगह जब मुट्ठीभर पूंजीवादी देशों को समाजवादी देश घेर लेंगे उस सुदूर भविष्य में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद कायम करने का सवाल पैदा हो सकता है।''

कुछ अजीबोगरीब तर्क

यह बात खासकर केवल मिकोयान के मंतव्य पर ही लागू होती है। शांतिपूर्ण व संसदीय तरीके से पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण संभव है—ख्रुश्चेव के इस कथन का समर्थन करने की कोशिश में मिकोयान ने कुछ देशों में 'शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति के विकास' के कुछ उदाहरण पेश किये हैं। ये उदाहरण बिल्कुल ही अप्रासंगिक, अवास्तविक और अतर्कसंगत हैं, क्योंकि जहां चर्चा का विषय यह है कि पूंजीवादी देशों में पूंजीवाद से समाजवाद में शांतिपूर्ण तरीके से संक्रमण संभव है या नहीं, वहां उस संदर्भ में शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति के विकास के समर्थन में चीन व चेकोस्लोवाकिया आदि देशों के उदाहरण देना बिल्कुल अतर्कसंगत बात है। यह वास्तव में आश्चर्य की बात है कि सीपीएसयू की पार्टी कांग्रेस में भी ऐसे स्तर की चर्चा करना व इस तरह के उदाहरण देना कैसे संभव हुआ!

अंत में तमाम चर्चा का सार संक्षेप में पेश करते हुए मैं कहूंगा कि 20वीं पार्टी कांग्रेस में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति, युद्धों की अनिवार्यता का नियम और अंतर्राष्ट्रीय शांति आन्दोलन को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से संचालित करने की पद्धति के बारे में इनके विश्लेषण मूलतः सही हैं इसलिए ये ही समर्थन योग्य हैं।*

* पहले ही बताया जा चुका है कि हमारे प्रिय नेता कॉमरेड शिवदास घोष के नेतृत्व में हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने सोवियत पार्टी के नेतृत्व को संशोधनवादी करार दिया था और किसी पार्टी ने पहले ऐसा नहीं किया था।

इस दृष्टि से विचारने पर हम यह पायेंगे कि वर्तमान नेतृत्व का मार्क्सवाद–लेनिनवाद से कोई मौलिक भटकाव नहीं हुआ है। फिर भी हम यह अवश्य कहेंगे कि उनके विश्लेषण व व्याख्याओं में कुछ लक्षण गंभीर खामियों से ग्रस्त हैं। इसलिए तमाम मामलों की गंभीर, निष्पक्ष और आद्योपांत जांच–परख करने की जरूरत है। जैसे शुरू में ही हमने कहा है कि हमारी इस आलोचना को कॉमरेडाना ढंग से ही लें। हम एक बार फिर आश्वस्त करते हैं कि हमारी चर्चा का समूचा उद्देश्य वर्तमान नेतृत्व की कमी–खामियों को दर्शाना और उन्हें दूर करके उसे मजबूत बनाना ही रहा है।

20 मई 1956 को दिया गया यह भाषण
24 जुलाई 1956 को पार्टी के
बांग्ला मुखपत्र *गणदाबी* में
सारांश में प्रकाशित हुआ था।